

धरोहर के झरोखे से

चौदह कोसी पंचायत

श्रीपत राय व भैरव प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित कहानी पत्रिका के नववर्षांक 1957 में प्रकाशित **ओमप्रकाश श्रीवास्तव** की कहानी **चौदह कोसी पंचायत** साहित्यानुरागियों के लिए प्रदर्शित की जा रही है—

ओमप्रकाश श्रीवास्तव

हजरत मंजर की घुसी आँखों में मशाल—सी रोशनी थी। उनकी दो—तीन दिन पहले की शेव की हुई दाढ़ी का एक—एक बाल गिना जा सकता था। उनके चिड़िया के पंजों—जैसे हाथों में पारे की—सी बेचैनी थी। वह बोल रहे थे और शाहिद टेलर मास्टर, उनके शागिर्द और बाजार के बेफिकरे आपाद—मस्तक कान बने उनकी बातों को पी रहे थे— आखिर क्या गरीब आदमी की इज्जत—इज्जत नहीं है? आज देखना है कि क्या दुनिया से इंसाफ बिल्कुल ही उठ गया है?

—पर अगर पंचायत में वह न आये?— शहीद टेलर मास्टर ने अपनी छोटी आँखें कुचकुचाते हुए भेद—भरे भाव से पूछा।

—ऐसी की तैसी उसकी! मंजर ने अपने दाहिने हाथ से हवा को एक जोरदार तमाचा मारा और आँखें तरेरते हुए बोले— अब दुनिया में वही रहेगा क्या?

शाहिद टेलर का लंगड़ा शागिर्द, जो हमेशा एक लाठी के सहारे उचकता हुआ चलता था, जबान चटखराते हुए बोला पर लड़की को तो शायद वह नहीं ही हाजिर करेगा। अरे, बड़ा घुटा हुआ है!

—सब हो जाएगा अगर चौधरी ने चाहा, शाहिद टेलर ने पहली बार खुली बात की।

कटरा की आधी दुकानें दोपहर होते—होते बंद हो गईं। इस जगह बसे जुलाहों में से अधिकांश दर्जीगीरी का काम करते थे। कटरे में आधी दूकानें सुर्ती की हैं, एक तिहाई दर्जियों की और बाकी में और—सारे काम आ जाते हैं। बुनाई का काम अब यहाँ थोड़ा —बहुत ही रह गया है। कभी—कभी अकबरपुर के जुलाहे अपने कंधों पर बुने माल की गठरी लादे यहाँ बाजार में भी एक दूकान से दूसरे दूकान

पर जाते हैं। ये अक्सर एक ट्रेन से आते हैं और अपना काम खत्म कर दूसरी से वापस चल देते हैं। यहाँ के जुलाहों के घरों में टूटे-फूटे करघे के हिस्से और बुनाई के दूसरे सामान गिरे पड़े मिल जाते हैं, जो इसकी याद दिलाते हैं कि उनका पुश्तैनी पेशा क्या रहा है। इस समय हर घर के दो-एक व्यक्ति कलकत्ता में रहकर कमाई करते हैं और पंद्रहवें बीसवें दिन कोई-न-कोई आदमी कलकत्ता से आता-जाता रहता है। हर आनेवाले के पास मुहल्ले के सभी घरों के लिए एक-एक खत होता है, सब मिलकर अच्छी-खासी डाक हो जाती है। इसके अलावा नकद रुपये और दूसरे सामान भी उसके असबाब का कम हिस्सा नहीं होते। इन सामानों में अक्सर तेल, साबुन, बिस्कुट, कपड़े, चाय, लुँगियों, लकड़ी की खड़ाऊ आदि की प्रधानता रहती है। इधर से हर जानेवाले को भी खतों का एक बंडल, जिनमें अक्सर सामानों की पहुँच का समाचार होता है, आगे की माँगे रहती हैं और मुहल्ले-भर का दुआ-सलाम रहता है, ले जाना पड़ता है। यहाँ का हर घर अपनी सामर्थ्य के अनुसार कलकत्ता में अपने आदमी के लिए पाव-डेढ़ पाव या आधा सेर पेड़े जरूर भेजता है, तो गोशाईगंज की नेशनल मिठाई कही जा सकती है।

मर्दों में अक्सर कटरे में वही व्यक्ति रह गये थे, जो परदेश के नाकाबिल थे। उनमें अधिकांश दर्जीगीरी करते थे, कुछ साइकिल के दूकानों पर बैठते थे, कुछ मजदूरी और दूसरे कामों में अपना और घरवालों का पेट पाल रहे थे।

आज उनकी दुकानों में पूरी हड़ताल नजर आ रही थी।

बात भी ऐसी ही थी। आज बारह-तेरह साल बाद जुलाहों की यह चौदहकोसी पंचायत होने जा रही थी। बेकार बूढ़ों तक में जैसे एक नई जवानी-सी आ गई थी। बूढ़े हाफिजजी अपनी सुफेद शरआ (धर्मानुकूल) दाढ़ी पर हाथ फेर-फेरकर पिछले दिनों की सुनहरी दास्ताने सुना रहे थे— अब क्या कर गया है, पहले चौदहकोसी पंचायत होती थी! उनके पास एक चपरासी था, जिसे पूरी वर्दी मिली थी। जिस वक्त अपनी वर्दी पहन, सुर्मा लगा, हरा साफ़ा बाँधे वह खड़ा होकर हर गाँव का नाम पुकार-पुकार हाजिरी लेता था और हर गाँव के लोग 'हाजिर, साहिबो' कह अपनी हाजिरी बोलते थे, क्या रोब का समाँ बँध जाता था! लोगों को बोलने तक कि हिम्मत नहीं होती थी, बोलने की! मजाल थी कि पंचायत के सामने कोई चूँकर सके। अब वह जमाना क्या आएगा।

लेकिन उम्मीद इंसान का साथ कभी नहीं छोड़ती है। शायद यह पंचायत अतीत के स्वर्णिम युग की परंपराओं में नवजीवन ला ही दे, इसकी भी उन्हें कुछ उम्मीद थी।

हाफिजजी अल्लाहवाले आदमी थे। सुफेद (सफेद) दाढ़ी, हाथ में हमेशा तस्वीह (सुमरनी), पाँचों वक्त नमाज के पाबंद। हर काम जहाँ तक हो सकता था, धर्मानुकूल करते थे। माथे पर सिजदे का दाग पड़ चुका था। वर्मा में जवानी के दिन बिता जापानी हमले के समय फिर वतन लौट आए थे। लेकिन उनकी खुशक जिंदगी में अभी रस का स्रोत पूरी तरह सूखा न था। मुहल्ले की लड़कियों में कौन जवान हो रही है, कौन अभी कम जवान है, पर अपने को पूरा जवान समझती है, किसका दुपट्टा उसके सर पर नहीं रहता, कौन छाती उभारकर चलती है... आदि रंगीन दास्ताने उनसे चाहे जितनी सुन लीजिए। बाजारू शेरों का अच्छा-खासा खजाना उनके पास था। मौके-बेमौके वह जवानी, मुहब्बत और हुस्न से संबंधित ऐसे शेर कहते थे कि सुननेवाला बरबस मुस्करा देता था, लेकिन हाफिज जी बाग-बाग होकर एक रस-भरा कहकहा मारते थे, जैसे कोई मार्का सर कर लिया हो।

नवजवानों को स्वाभाविक ही इस मामले में दिलचस्पी थी। उनके देखते-देखते नूरा को वह पागल इशियाक हथिया ले जाय, यह नाकाबिले बरदाश्त था। मंजूर साहब तो खैर से शायर थे, भले वह शायर कम और टेलर अधिक हों, उन्हें जो मिर्च लग गई थी, वह तो ठीक ही था। लेकिन हर नौजवान में सौंदर्यप्रियता का माद्दा होता ही है, यह उनकी मर्दानगी, उनकी जवानी की सरासर तौहीन थी कि नूरा उस अधेड़ पागल के साथ चल दे। और कुछ चाहे वे कर सकें या न कर सकें, पर कम-से-कम वे इंसाफ तो कराके ही रहेंगे।

हक ने बीड़ी का एक लंबा कश लेकर कहा—यह हरामजादी औरतें, सच कहा है, अल्लाह ने नाक न दी होती, तो ये मैला खाती! आवेश से हक की चौड़ी छाती फूल रही थीं।

हक के शरीर और दिमाग में कोई अनुपात न था। देखने में लंबा-चौड़ा, स्वस्थ, जवान, लेकिन मानसिक विकास की दृष्टि से बच्चा। माँ उसकी नकेल पकड़ जैसा चाहती चलाती थी। वह धाय का काम करती थी और बड़ी दबंग औरत थी। उसने अपने शौहर और लड़कों पर सिर्फ हुकूमत करना ही जाना था। बचपन से ही

उसके कठोर शासन से हक़ का मन बिल्कुल मर गया था। वैसे वह कुछ ठंडी तबीयत का था भी। सिर्फ़ उसे गाने में दिलचस्पी थी। और यहाँ के नौजवानों में उसकी झंकारवाली आवाज की धूम थी। उसे खामख्याली यह थी कि वह मुहल्ले-भर की औरतों का निगहबान है और जब वे उसे कहीं भी आते देख लेती हैं, उनकी तमाम खरमतिस्त्रियाँ गायब हो जाती हैं। औरतों का बर्ताव भी उसके प्रति कुछ अजीब मौलवियाना-सा था।

साइकिल की दूकानवाला दीनू भी उनमें आ मिला। इन लोगों के बीच में हाफिजजी को छोड़कर सिर्फ़ उसकी ही एक शानदार दाढ़ी थी। आवाज खुलती और ठहर-ठहर, चीख-चीखकर बोलने की आदत, जैसे भाषण दे रहा हो। उसने आते ही प्लेटफार्म मंजर छीन लिया-यारों! मुँह में कालिख लग गई। इसमें सारी कौम की 'इन्सल्टी' हो रही है। और ज़रा हौसला तो देखो बदजात का! इतने दिनों अपने घर पर ही उसे रखे रहा पट्टा, जैसे निकाह करके लाई औरत को भी कोई क्या रखता होगा।

शाहिद टेलर ने मंजर को अपनी बगल में खींचा और फुसफुसाते हुए बोले-सुना है वह तुम्हारे खिलाफ भी कुछ मामला उठाएंगे।

मंजर साहब चौंके, लेकिन फिर संभलकर बोले-यह बात ऐसों के मुँह से जमेगी नहीं। घबराओ नहीं। जब मेरा दिल साफ़ है तो मैं खुदा से भी नहीं डरता।

लेकिन मंजर कुछ बेजमा हो गए थे। कुछ कदम पीछे हट घूमे और पान की दुकान के समाने उन्होंने कैंची की दो सिग्रेटें खरीदीं। एक उन्होंने इतमीनान से सुलगा ली और गहरा कश खींचा। फिर धीरे-धीरे नथुनों से धुआँ निकालने लगे। उनकी बेचैन नज़र छिछलती हुई पान की दुकान से सटे मिठाई की दुकान पर बैठी सहुआइन पर ठहर गई। उसका यौवन ढल चुका था, गोल-मटोल चिकना शरीर, ज़रा बनाव-सिंगार से रहती थी और हँसते समय उसके भरे गालों में गढ़े उभर आते थे। मंजर को वह एक बड़ी-सी डालडे की बनी गुलाबजामुन-सी लगती थी।

मंजर साहब याद करके अपने बालों की एक लट उँगलियों से सुलझाते हुए लापरवाही से बोले-ले लेना पैसे और दुकानवाले को कुछ कहने का मौका दिए बिना फिर मुड़कर सड़क पर खड़े लोगों के पास आ इन्साफ़ और गरीबों की इज्जत के गंभीर मसले पर विचार-विनिमय करने लगे।

(2)

यहाँ जुलाहों के तीन चौथाई खानदान पहले रंगून में रह चुके थे। जापानी हमले की आँधी ने उन्हें उखाड़ कर फिर वतन में ला पटका, जो उनके लिए परदेश से ज्यादा अजनबी था। युद्ध समाप्त होने पर साहसी लोगों ने फिर हाथ-पैर मारे, लेकिन अबकी कलकत्ता तक ही जाकर अटक गए और किसी तरह मेहनत-मजदूरी, दूकानदारी में लग गए। जो बाकी बचे, वे यहाँ किसी प्रकार दिन काटने लगे।

नूरा का बाप उस्मान भी उन पौधों में था, जो एक जगह से उखड़कर दूसरी जगह फिर नहीं लगते। बर्मा में उन्होंने अच्छे दिन देखे थे। लेकिन जब वह अपनी बीमार बीवी और तीन बच्चों को लेकर वतन लौटा तो उसकी जिंदगी का शीरजा ही बिखर गया। और उसके बाद उनकी हालत बद से बदतर होती गई। भाई-बंद, पड़ोसी, साथी उन्हें उखाड़ देने की फ़िक्र में लगे थे। उन्होंने उनके मौरुसी मकान पर कब्जा कर लिया था, अब उनके लौटने पर वह छोड़ना पड़ा। यह बात उन्हें खल गई। उस्मान दिनभर मेहनत-मजदूरी की तलाश में मारा-मारा घूमता। उसकी बीवी दिनभर बिस्तर पर पड़े-पड़े बच्चों पर चिड़चिड़ाती, उन्हें कोसने देती और तीनों बच्चे रोते-चीखते, बिलबिलाते हुए भी बढ़ते चले जा रहे थे। नूरा की जवानी ने ऐसे ही वातावरण में आँखें खोलीं।

एक मामूली लड़की, मामूली जिंदगी। सुबह अजान की आवाज़ के साथ जागकर घर का कोना-कोना साफ़ करती, पानी भरती, बरतन माँजती, फिर भाई-बहनों को रात की बची बासी खाने को देकर मुहल्ले की औरतों के साथ लड़कियाँ इकट्ठी करने, पत्ते बटोरने या बकरी चराने निकल पड़ती। लौटकर खाना पकाती, भाई-बहनों के पुराने कपड़ों को गूँथती, उनमें थिगलियाँ लगाती, अपनी हम उमर लड़कियों के साथ हँसती-बोलती और रात को काम से थककर चूर हो बिस्तर पर पड़ बेखबर सो जाती। पहली उठान में ही घर-गिरस्ती का इतना भारी बोझ सँभालकर भी जैसे उसकी उमड़ती जवानी दबना जानती ही न थी। उसके होंठों पर हमेशा एक स्वस्थ हँसी थिरकती रहती थी।

बचपन उसका बर्मा में बीता था, जो साधारण भाषा में औरतों की आजादी का स्वर्ग कहा जाता है। उस देश की आबोहवा ने नूरा के खमीर पर असर डाला था। शोखी, शरारत उसकी प्रकृति में थी और माहौल के असर से निर्भीकता भी उसमें आ मिली थी। धीरे-धीरे उसकी मुस्कुराहट, उन्मुक्त हँसी पास-पड़ोस की बदसूरत स्त्रियों और खूसट बूढ़ियों के सीने पर साँप बनकर लोटने लगी। मर्द और औरतें

उसके निर्भीक व्यवहार से अधिक से अधिक गलतफहमियों में पड़ने लगे। उसकी बात ले कुछ घरों में खानगी अनबन रहने लगी। पहले उँगलियाँ उठीं, फिर कानाफूसी हुई और फिर लोग यकायक उससे भय खाने लगे और उसके बाप पर दबाव डालने लगे कि जवान लड़की को वह कब तक घर बैठाये रखेगा, निकाह करके उसे उसके घर क्यों नहीं रवाना करता।

और यह फितने तब शांत हुए, जब निकाह के बाद नूरा अपनी ससुराल ढकेल दी गई।

मियाँ लतीफ, उसके शौहर, के यहाँ लुगड़ियों का व्यापार होता था। उनकी उमर कुछ ढल चुकी थी। पहली बीवी का फातिहा पढ़ चुके थे। उससे कुछ संतानें भी थीं। उनकी चाँद साफ होने लगी थी। देखने में कमजोर, निरीह, और फाकों के मारे इंसान से लगते थे। कसाई की दुकान की तरह उनके खुले मुँह के इर्द-गिर्द सदैव मक्खियाँ भिनका करती थीं। पहले दर्जे के स्वार्थी थे, अपने खाने-पहनने और दुकान के काम के अलावा और किसी चीज़ में दिलचस्पी न थी। अभी तक उनके बूढ़े-माँ-बाप भी जिंदा थे।

तंग, सीलन-भरे बदबूदार एक कमरे में नूरा की जिंदगी, उसकी उफनती जवानी को कुचल देने की पूरी साजिश की गई। बूढ़े-बूढ़ी ने उसका जीना मुहाल कर दिया। पेट-भर खाने-पहनने को भी तरसने लगी, बाहर की खुली हवा हराम हो गई, क्योंकि उसके ससुरालवाले उससे पर्दा भी करवाना चाहते थे। हरदम जर-खरीद गुलाम की तरह छाती फाड़कर काम करना पड़ता, फिर भी लोगों की नाक सीधी न होती थी।

कुछ दिनों के लिए तो वह हत्बुद्धि-सी रह गई। लेकिन फिर उसके हृदय का एक-एक रक्त बिन्दु विद्रोह कर उठा। प्यार और सहानुभूति से उसे गुलाम बनाया जा सकता था, लेकिन दबाकर उसे झुकाना मुश्किल था शौहर की तो शकल तक से उसे नफरत होती हो गई। उसे देखकर उसका जी मिचलाने लगता। यद्यपि ठीक से तो इन तमाम भावनाओं को वह न समझ सकी, लेकिन इतना जरूर देखा गया कि अक्सर घरवालों के कहने से बिल्कुल उल्टा करने की इच्छा उसके अंदर से रोज-रोज बलवती होती गई। उस पर सख्तियाँ बढ़ीं, कुछ पहले की उड़ी-उडाई खबरें और कुछ उसके हुस्न और खुले व्यवहार से उसकी ससुरालवाले भी डरे न हों, ऐसी बात न थी। बातों से नौबत मारपीट तक आ पहुँची। लेकिन इन

सब बाधाओं ने धीरे-धीरे उसे ठोस बनाना शुरू किया, और पल-पल वह अपने में अत्यधिक शक्ति का उफान महसूस करती गई।

इश्तियाक इस समाज में पागल नाम से मशहूर था। बचपन में ही वह कस्बे के दूसरे लोगों के साथ बर्मा भाग गया था। घर में अच्छी-खासी खेती-बाड़ी थी। दो करघे चलते थे। लेकिन अपनी सैतेली माँ से उसकी पटती न थी। इसलिए 12-13 साल की उमर में ही वह घर छोड़कर चल दिया था।

बर्मा में उसे मजदूरी की, नान बेचा, साइकिलों की दुकान पर काम किया और पता नहीं कितनी तरह के ज्ञात और अज्ञात काम किए। मुहल्ले के काफी लोग रंगून में थे, लेकिन उनके लिए भी उसकी जिंदगी रहस्य से कम न थी। कुछ कहते थे कि उसने एक बर्मिन स्त्री से शादी भी की थी, बर्मिन स्त्री को रखने की बात उन्होंने सुनी थी, लेकिन शादी करने का ख्याल उनके लिए पागलपन था, उसके एक बच्चा भी था, जिस वह बहुत प्यार करता था। लेकिन जापानी हमले के समय उनका क्या हुआ, किसी को ठीक न मालूम था। यहाँ न लौटने पर काफी दिनों बाद लोगों ने उसे मरा समझ लिया था। तब वह फिर आ टपका।

उसके माँ-बाप मर चुके थे। अब घर की सारी जायदाद सौतेले भाइयों के पास थी। उसके काफी हमदर्द निकल आए, जिन्होंने उसे सुझाया कि उसे जायदाद बँटवा लेनी चाहिए। लेकिन इश्तियाक ने उनकी बातों पर कान न दिया। कहता-क्या करूँगा मैं हिस्सा लेकर। भाइयों की आल-औलाद हैं, ऐसे ही तंगदस्ती में गुजर होती है। बाँटने पर तो शायद जीना भी मुश्किल हो जाएगा। मेरा क्या, जब तक जीता हूँ, एक टुकड़ा चाहिए, अल्ला की दुआ से उसकी मोहताजी नहीं है। पेट कहीं भी भर सकता हूँ। और फिर मरने पर दो गज कफन चाहिए, वह भाई दे ही देंगे। बस।

लोगों ने लाख सुझाया कि अभी उसकी उम्र ही क्या है, मुश्किल से चालीस पहुँचा होगा। उसे जायदाद बँटवाकर निकाह कर घर-गृहस्थी बसानी चाहिए। लेकिन दुबले-पतले शरीर, उकाबी नाक, गड्ढों में धँसी, दुनिया देखीं तेज आँखों वाले इश्तियाक को यह साधारण बात वे न समझा सके।

यह पागलपन ही तो था।

सन् 42 के बाद आया सन् 46। हिंदुस्तान-पाकिस्तान की सियासत ने गाँव-गाँव, कस्बे-कस्बे तक दखल जमा लिया। तब इश्तियाक ने पागलपन का

दूसरा सबूत पेश किया। लोगों ने उसे समझाया कि उसे पाकिस्तान के हक में वोट देना चाहिए। इस्लामी हुकूमत बनेगी, अपना मुल्क होगा और अपनी हुकूमत। हर तरह की आजादी, आराम मय्यसर होंगे।

लेकिन वह ऐसी साफ बातें भी न समझ पाता था। उसने सवाल किया— अपना मुल्क वही होता है, जहाँ इंसान की रोजी होती है। हमारी समझ से तो बर्मा ही हमारा असली मुल्क है, जहाँ से हमें जबरदस्ती खदेड़ दिया गया है। और अब परदेश में हैं, हिंदुस्तान भी और पाकिस्तान तो और भी परदेश—दर—परदेश होगा। फिर यह कहनेवाले गदहे हैं कि यह हमारा मुल्क नहीं, यहाँ हमारे घर हैं, हमारी मस्जिदें हैं, खेती—बाड़ी है, जायदादें हैं, बाप—दादों की दफनाई हड्डियाँ हैं! यह दूसरा मुल्क कैसे हो गया?

लोगों फिर समझाया—रोजी भी हमारी पाकिस्तान में ही ठीक रहेगी। यहाँ हमें कोई फूटी आँख भी नहीं देखता। इस्लामी राज में मौज करेंगे।

उसने कुछ गर्म होकर कहा—कुछ मौज हिंदुस्तान आकर की है और कुछ अब पाकिस्तान चलकर करेंगे! वहाँ शाखों में रोटियाँ तो फलने से रहीं कि बिना मेहनत किए तोड़कर खा लेंगे। तुम जाओ, मौज करो, मैं तो मेहनत की कमाई खाऊँगा और मरकर यहीं दफन दूँगा।

पता नहीं क्यों, बचपन के सैलानी इश्तायक को अब जगह छोड़ने और बदलने का ख्याल भी नागवार लगने लगा था।

वह घर पर पड़ा रहता। मेहनत—मजदूरी कर रूखी सूखी खा लेता। सबसे अलग—थलग पड़ा रहता या कुरान पढ़ने में व्यस्त रहता। भाई उससे जलते, क्योंकि उन्हें डर था कि किसी समय भी वह अपना हक पाने का दावा कर सकता है। लेकिन वह अपने भाइयों की खैरखाही में मरा जाता था। उनके बच्चों पर जान छिड़कता था, उनका घोड़ा बनता, उन्हें कंधों पर चढ़ा टहलाता, उनकी बीमारी में रात—रात जागकर उनकी तीमारदारी करता और अपनी कमाई का एक बड़ा हिस्सा उनपर खर्च करता रहता।

लोग यह सब देखते और अपने को समझ लेते कि जापानी हमले की दहशत ने उसका सर फिरा दिया है।

(4)

लतीफ मियाँ की एक रिश्तेदारी में निकाह के सिलसिले में पागल इश्तियाक और खतरनाक नूरा टकरा गए। इन दो विचित्र व्यक्तियों की टक्कर से विद्रोह की ऐसी चिनगारियाँ फूट पड़ीं जो जल्द ही एक शोले की शक्ल में तबदील हो गईं और फिर लावा बनकर एक दिन फूट पड़ीं।

नूरा—निस्तेज—सी थी। मुर्झायी कली की हसरत उस पर बरस रही थी। आँखें खुश्क, आँठ सूखे और अपनी जिंदगी से बेजार। लेकिन इस राख के अंदर विद्रोह की चिनगारियाँ भी सोयी पड़ी थीं।

इश्तियाक को जीवन से न अब कुछ इच्छा थी और न शिकायत। पहाड़—सा कठोर पौरुष, एकहरा चौड़ी हड्डियों—वाला दुबला शरीर, गड्डों में घुसी तेज़ आँखें, उकाबी नाक और छिदरी दाढ़ी, कनपटियों के पास उभरी हड्डियाँ।

नूरा को चाहिए था एक सहारा और इश्तियाक को चाहिए था एक आधार जिससे जिंदगी का सूनापन भर सके और जिसके लिए वह कुछ कर सके।

पहले भी वह नूरा को मामूली तौर से जनता था। उस दिन पूछ पड़ा— यह तेरी क्या हालत हो गई है, रे? बीमार रही है या ससुरालवाले खाना नहीं देते?

नूरा का चेहरा पहले सुर्ख हुआ, फिर जर्द और तब स्याह। एक लंबी साँस ली। लेकिन सच कहे बिना न रह सकी— खाना—पीना कुछ अच्छा नहीं लगता, मरूँ तो जान छूटे!

—क्यों? उसके खुरदरे स्वर में सहानुभूति की गर्मी थी— पहले तो तेरी हँसी ही लोगों की जान आफ़त में डाल रखी थी। अब यह क्या है?

नूरा ने आँखें झुका ली। पहले ही काफी से ज्यादा कह गई थी। लेकिन उसका हृदय रो पड़ने के लिए बेताब हो गई, दुख ने नहीं, झुँझलाहट से, आवेश से।

फिर संभालकर बोली—बस, सब खाना—खेलना हो चुका। अब तो यही बाकी है कि कहीं डूब मरूँ या रेल की पटरी पर...

—पागल हुई है तू? दिमाग खराब हो गया है क्या?—उसने डाँटा—जिंदगी बड़ी प्यारी शै है, अल्ला की न्यामत! ऐसा सोचना भी न चाहिए।

—तुम भी मुझे पागल बताते हो, हालाँकि बच्चा—बच्चा जानता है कि खुद तुम्हारा दिमाग सही नहीं है! कहते—कहते नूरा मुस्कुरा पड़ी, उसके चेहरे पर रोशनी—सी फैल गई।

इश्तियाक को इस समय वह खतरनाक हद तक अच्छी लगी।

कभी खाली, खोखली और बेकैफ जिंदगी रेंगती है तो सालों की अहमियत मिनटों से भी कम होती है और कभी भरी-पूरी जिंदगी पर लगाकर उड़ने लगती है, तो मिनटों की अहमियत सालों से बढ़ जाती है। ये लमहे ऐसे ही थे!

नूरा ने जाते-जाते मुड़कर एक बार इश्तियाक को देखा।

इश्तियाक अस्वाभाविक रूप से गंभीर था।

(5)

ये लमहें नूरा की जिंदगी को बदल गए। सहानुभूति की अनुकूल गर्मी पाकर जिंदगी के अंकुर फूट पड़े। फिर लोगों ने उसकी उन्मुक्त हँसी सुनी और उसका खुला व्यवहार देखा। फिर लोगों को गलतफहमियाँ होनी शुरू हुईं, फिर पास-पड़ोस, मुहल्ले के लोग उससे डरने लगे।

हज़रत मंजर की सौंदर्यप्रिय दृष्टि उस पर पड़ी और उन्हें इश्क हकीकी (आध्यात्मिक प्रेम) का दौरा पड़ गया। उन्होंने लतीफ की दोस्ती के जरिये उधर कदम जमाने की कोशिश की और नूरा के हुस्न की तारीफ और अपने दर्द-दिल पर सैकड़ों गजलें कह डालीं। ये गजलें गुंशाईगंज के नवयुवक-समाज में छा गईं।

एक दिन मौका पा उन्होंने नूरा को छेड़ा। नूरा ने सिर्फ अदबी (साहित्यिक) माशूकाना बेएतनाई (सहानुभूति) से ही काम न लिया, बल्कि उन्हें कुछ ऐसी खरी-खरी सुनाई कि वह बेमजा हो गए और अब तारीफों की जगह हजो (निंदा की कविता) पर उतर आये। और उसे बदनाम करने में उन्होंने कोई दकीका न उठा रखा।

इन अफवाहों का उसकी जिंदगी पर असर न पड़ता, यह असंभव था।

घर के लोगों की जा-बेजा सख्तियाँ बढ़ती गईं, जीना दूभर हो उठा।

मुहर्रम के ढोलों से वातावरण धमक रहा था। मुहल्ले के बच्चों से लेकर बूढ़ों तक में एक हैजान था। औरतों के नए कपड़े सिल रहे थे, पुराने गहने चमकाए जा रहे थे। उन पर के सारे प्रतिबंध ढीले पड़ गए थे। अबकी नूरा को घर भी न जाने दिया गया था।

शाम का वक्त था। नूरा ने भी कपड़े बदले। काले रंग का दुपट्टा चुना और पड़ोस की स्त्रियों के साथ नवीं देखने के लिए तैयार हो गई। लेकिन उसकी सास को यह कब गवाँरा होता कि उसे भी हँसी-खुशी के दो लमहे नसीब हों। यह

सिंगार कर लाड़ों किसको दिखाने जा रही हैं? ऐसे ही क्या कम थुड़ी-थुड़ी मची हुई है! बहू-बेटियों के ऐसे लच्छन...तुम्हें नहीं जाना है!

नूरा ने नंगी तलवार बनकर कहा—देखूँ, कौन रोकता मुझे! मैं कोई नई बात नहीं करने जा रही हूँ।

बुढ़िया हाथापाई पर उतर आई और नूरा का दुपट्टा छीन ताले में बंद करने की कोशिश की। नूरा ने भी एक धक्का दे दिया। बूढ़ी लड़खड़ा गई और फिर तो उसने ऐसी हाय-तोबा मचाई कि खुदा की पनाह! घर के लोग जुट गए और नूरा की अच्छी ठुकाई हुई। उसके कपड़े छीन बकस में बंद कर दिए गए। उसकी दशा नजर-बंद सी हो रही थीं।

एक दिन इश्तियाक मस्जिद से निकल रहा था कि वहाँ के कुएँ पर पानी भरती नूरा उसे मिल गई। उसने उसे रोका— उस दिन तुमने कहा था, क्या यह सच है कि जिंदगी अल्ला मियाँ की दी हुई न्यामत है?

—हाँ, उसने अचकचाकर कहा।

—मेरी समझ में तो जिंदगी शैतान की दी हुई लानत है! और आज मैं बता दूँ, मैं इस लानत को उतार फेंकूँगी!

इश्तियाक ने गौर से उसे देखा। उसके चेहरे पर वहशतनाक दृढ़ता थी। धीरे-धीरे नूरा ने उसे कच्चा चिट्ठा कह सुनाया और अपने बाजू खोल उन चोटों के निशान भी दिखाए, जो उसके शौहर और घरवालों की मार-पीट से बने थे। धीरे-धीरे इश्तियाक का शरीर तन गया, आँखें सुर्ख हो गईं और वह उबल उड़ा—जहन्नुम में झोंक दे ऐसे खाविन्द और लात मार ऐसे घर को!

—क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? —नूरा ने जैसे अपने से प्रश्न किया।

लेकिन प्रश्न और उत्तर दोनों बेकार थे। उन्होंने एक-दूसरे को दूर तक समझ लिया था। और यह समझदारी समाज के लिए चैलेंज बन गई।

(6)

आबादी से दूर एक तालाब के किनारे चौदहकोसी पंचायत की बैठक शुरू हुई। ऐसी बैठकें आमतौर से शाम को रखी जाती थीं, क्योंकि रात अपनी होती है, इफरात वक्त रहता है, पर जाड़े की शिद्दत का ख्याल कर पंचायत ठीक बारह बजे दिन से शुरू हुई, जिससे शाम तक छुट्टी मिल जाय।

जाजिम बिछायी गयी, वह जाजिम जिसपर आज वही बैठ सकते थे, जो बिरादरी के सच्चे सदस्य थे। जो जाति बाहर थे, उन्हें जमीन पर बैठना था, जाजिम से बाहर, जाति से बाहर।

आज बड़े गाँव के चौधरी का रोब ही कुछ और था। हरा साफा, सुफेद (सफेद) छतनार दाढ़ी, चिमड़े काले रंग का झुर्रियोंदार चेहरा, आँख में बारीकी—सी सुर्मे की लकीर। बूढ़े हाफिजजी उनकी बगल में थे। उसके बाद दीनू, सत्तार, मंजर साहब। गन्दे—फटे कपड़े, तहबन्द, कुर्ते, अँगरखे, बद्धियों के बने चप्पल, बकरदाढ़ी, खसखसी, डोरों से बँधी ऐनकें, गढ़ों में धँसी आँखें, अंग्रेजी फैशन के कटे, तेल से तर झब्बेदार बाल, उल्टी माँगें, कमीजे, पैजामें, शू, एक्कादुक्की घड़ी, रंगीन खुशबू से तर रूमाल...और सब मिलकर पंचायत, एक व्यवस्था, एक निजाम, जिसमें सारी चीजें घुल—मिलकर एक बन गई थीं, जाजिम ने उन्हें जोड़कर एक बना दिया था, एक इकाई, जिसके सैकड़ों मुँह थे। सैकड़ों हाथ थे।

तमाशाई भी कुछ कम न आए थे।

जाजिम के व्यक्ति चाहे जवान हों या बूढ़े, सभी अजीब गंभीरता से मुँह लटकाए बैठे थे, खामोश, गंभीर, जैसे विचारों पर आसमान टूट पड़ा हो। सिर्फ तमाशाइयों की जबाने कतरनी—सी चल रही थीं। अगर बाहर का व्यक्ति उन्हें इस दशा में देख पाता, तो बेसाख्ता हँस पड़ने की इच्छा कभी न रोक पाता। सिर्फ नाऊ, जो हुक्का भर—भरकर पंचों को दे रहा था, वही जरा चुस्त नजर आता था और सब तो जैसे टांगें तोड़कर बैठ गए हों और अब कयामत तक ऐसे ही बैठे—बैठे हुक्का पीने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं है। हुक्का मजलिस में घूम रहा था और लोग उसे इतने आदर से लेते और पीते थे जैसे यह बड़ा ही अहम और जिम्मेदारी का काम हो।

इस तरह करीब दो घंटे बीत गए और अभी तक कोई कार्रवाई शुरू न हुई। दर्शकों में बेसब्र लोग पंचों को मन ही मन गालियाँ देते खिसकने लगे और नये लोग आने लगे।

आखिर खुदा—खुदा करके चौधरी खाँसे। दर्शकों की जान में जान आई। चौधरी ने पूछा— सब पंच आ गए हैं?

चौकीदार ने खड़े होकर गाँव का नाम पुकारा और एक घंटे तक हर गाँव के नाम पुकारे जाने पर कोई न कोई 'हाजिर साहिबो!' कहकर अपनी उपस्थिति की सूचना देता रहा।

फिर चौधरी ने हुक्के के कुछ पुरजोर कश खींचे।

—भई, लतीफ और उस्मान! तुमने इतनी दूर-दूर के पंचों को क्या जमा किया है? मामला क्या है?

लतीफ और उस्मान ने एक पैर पर खड़े हो कहना शुरू किया—दुहाई है पंचों साहिबो की! हमें इंसफ चाहिए! इश्तियाक मेरी बीबी कोमेरी लड़की नूरा... —इस तरह जब वे लड़खड़ा जाते, तो दूसरे पैर का सहारा लेकर बैलेंस ठीक कर लेते थे और फिर दूसरी टाँग पर खड़े हो जाते थे। इस प्रकार इज्जत और आबरू के मिट्टी में मिल जाने की दास्तान जारी रही।

फरियाद हो चुकने पर पंचों ने दो मजबूत नौजवानों को हुकुम दिया कि इश्तियाक को हाजिर करें और अगर मरदूद सीधी तरह से न आए, तो टांग पकड़कर कुत्ते की तरह घसीट लाएं। नौजवानों ने इसरार किया कि नूरा को भी बुलाया जाय, लेकिन वह गुम थी और उसका पता सिर्फ इश्तियाक ही दे सकता था, इसलिए इस समय उसी को लाने का हुक्म दिया जा सका।

इतनी कार्यवाही के बाद पंच फिर इतमीनान से हुक्का के कश लेने लगे। उनके चेहरों पर फिर वही सुस्ती, जड़ता बेबसी और यतीमी—सी बरसने लगी।

(7)

इश्तियाक जिंदगी को सरल रेखा के रूप में देखने का आदी था। लोगों के एतराज पर उसने कहा था नूरा बालिग और जवान लड़की है, नहीं रहना चाहती है, तो लतीफ उसे तलाक दे दे। मामला खत्म।

लेकिन काश, हमारी जिंदगी ऐसी सरल रेखाओं से कुछ भी समानता रखती! मंजर साहब की सरतोड़ कोशिशों से चौदहकोसी पंचायत की योजन हो गई। नूरा का बाप उसकी जिंदगी से कुछ वाकिफ था, इसलिए उसने पहले भी तलाक की बातें की थीं। उसकी रजा न थी, लेकिन डरा—धमकाकर लोगों ने उसे वादी बनने पर मजबूर कर दिया। इश्तियाक ने जब इन बातों की चर्चा सुनी, तो बिफर गया, मैं पंचायत—वंचायत कुछ नहीं जानता। अगर किसी को कुछ कहना है, तो सीधे रिपोर्ट कर मुकद्मा लड़ ले। देखूँगा, बालिग लड़की को कौई कैसे जबरन रोक लेता है!

लेकिन लोगों ने उसके भाई की लगाम टाइट की। उससे इशतियाक के समाने एक दूसरा पहलू आया।

उसके भाई ने समझाया कि आखिर वह बाल-बच्चेदार आदमी है, यहाँ रहकर वह उसके ऊपर भी कहर ढाने की तैयारी कर रहा है। नूरा को कहीं भेज दे और स्वयं पंचायत में हाजिर हो अपनी बातें समझा दे। क्या कर लेंगे वे। उसके न जाने पर और खराबी होगी।

चारखाने की लुंगी बाँधे, खुले गले की कमीज पहने लापरवाही से कदम रखता जब इशतियाक आता दिखाई दिया, तो सारे मजमे को जैसे एक सकता पड़ गया हो। ऐसा लगता था, जैसे इशतियाक कोई ऐसा अफसर हो, जिसने षड़यंत्रकारियों को ऐन मौके पर पकड़ लिया हो, और अब वे अपनी हरकत पर नादिम हैं।

चौधरी खाँसे-पंचों की राय है कि मुजरिम मुर्गा बनकर खड़ा हो।

सारा मजमा इशतियाक को अजनबी-सा लगा। एक मनहूस, अपराधी मनोवृत्तिवाला मजमा? जिसके आगे रोना स्वयं अपने दीदे खोना होता। उसने भरसक नम्रता से कहने की कोशिश की-पंचों साहिबों! मेरी भी तो कुछ सुन ली जाय।

मंजर साहब ने जेबवाला सिग्रेट सुलगा लिया था। वह किचकिचाए-नामाकूल! कमीने! बदजात! हुकुम ऊदली करता है! पहले मुर्गा बन, फिर बात कर!

चौधरी ने धुँधली आँखों से मंजर को घूरा और फिर खामोशी से बोले-पहले हुकुम बजा लाया जाए, फिर बात सुनी जाएगी।

दो-तीन नवजवान उठे कि अगर जरूरी हो, तो हुकुम मनवाया जाय। इशतियाक ने पूरी तरह समझ लिया कि यहाँ आकर भूल हो गई है। वह मूर्खों के शिकंजे में फँस गया है, जहाँ अक्ल की बात गुनाह है। ऐसे व्यक्ति उसके निर्णायक हैं, जिनके दिमाग में सदियों का कूड़ा जमा है, जिसकी वजह से वे बेहिस हैं और इसलिए इतमीनान से बड़े-से-बड़े अन्याय करने में भी वे न हिचकेंगे, क्योंकि वे समूह में हैं, जो उनकी पशुता और क्रूरता को बराबर हवा दे रहा है।

दो शक्तिशाली व्यक्तियों ने उसे झुका दिया। उसने भी प्रतिरोध न किया कि शायद इससे खुश हो पंच उसकी बात सुनने को तैयार हो जाएँ। हाथ पैरों पर

झुक, पैरों के नीचे से हाथ निकाल अपनी कनपटियों पर लगा लिए। अनोखी चीज यह थी कि अब वह भी इस अंधी शक्ति से कुछ सहम-सा-उठा था।

किसी ने सुझाव दिया कि यह काफी नहीं है, पीठ पर बोझ लादा जाना चाहिए। मंजर ने पुरजोर ताईद की। और उसकी धनुष हो रह पीठ पर ईंटें लादी जाने लगीं। सारी व्यवस्था भंग हो चुकी थी, कान में आवाज मुश्किल से सुनाई पड़ती थी, हर एक अपनी बात कह डालने के जोश में था। मजमा पूरी तरह गर्मा चुका था। कुछ इस दाढ़ीवाले मुर्गे की तारीफ कर रहे थे। मंजर का दुहराया हुआ यह मिसरा बहुत पसन्द किया गया: मजनुँ काम का होशियार नाम का दीवाना था!

चार... छ: ईंटेंइश्तियाक ने जोर मारा-पंचों साहिबों! आप इंसाफ करने बैठे हैं, पहले जुर्म साबित हो, तभी जो-कुछ भी हो सजा दी जाय!

उसकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज होकर रह गई।

पीठ पर ईंटों का बोझ बारह से अधिक हो रहा था। यहाँ तक कि दो आदमियों को ईंटों के किनारे हाथ लगा सँभालना पड़ रहा था, वरना वे ठहरती ही न।

खामोशी से हुक्का पंचों में घूम रहा था।

खून का दबाव सर की तरह होने से इश्तियाक की आँखें सुर्ख हो रही थीं, जैसे अभी-अभी उनसे खून टपक पड़ेगा। बरदाश्त की हद हो गई। उसने जोर मार ईंटें उलट दीं, नजदीक के लोग अपना पैर बचाने के लिए हटे, लेकिन दो-तीन ईंटें पास के व्यक्ति के पैर पर गिर ही पड़ीं, वह हाय-हाय करने लगा।

इश्तियाक तनकर खड़ा हो गया- लानत है तुम सब पर! जाता हूँ! अपनी पंचायत को शहद लगाकर चाटो अब!

लेगों ने उसे घेर लिया कि फिर से मुर्गा बनाया जाय, लेकिन चौधरी ने बाधा दी-मुलजिम लड़की का पता बताए और उसे अगली पंचायत में हाजिर कर देने का वादा करे तो रहने दो।

मुलजिम इश्तियाक ने निर्भयता से कहा- मुलजिम मैं नहीं हूँ! (लतीफ और उस्मान की ओर इशारा कर) बल्कि ये हैं। जिन्होंने नूरा को जानवर की तरह खरीदा बेंचा है, जिन्होंने हर जायज़-नाजायज तरीके से उसे इस्तेमाल किया और अब उसे अपनी मिलिकयत समझकर मुझ पर चोरी का इलजाम लगा रहे हैं।

पंच आग हो गए। मंजर को तो जैसे दौरा पड़ गया हो। इतनी बेबाकी! यह दीदी-दिलेर! हाफिजजी को लगा, जैसे कयामत के सारे आसार प्रकट हो गए हैं, या रब्ब, रहम! उनके मुँह से निकला।

पंचों में अच्छी-खासी काँव-काँव सी मच गई। वे बौखला से उठे थे और सब एक साथ ही बोलने की कोशिश कर रहे थे। हाफिजजी की आवाज उभरी-बेशक! अल्ला ने खुद फरमाया है कि औरतें तुम्हारी खेती...याने मिलकियत हैं।... 'कबूल करवाया जाए' की आवाजें आने लगी। मंजर साहब झपटे, दर्शकों में से भी जोशीले व्यक्तियों ने इस अहम काम में पंचों की सहायता करने और इस काम को सरअंजाम देने का काम उत्साहपूर्वक अपने ऊपर ले लिया।

इश्तियाक ने अपने को बचाना चाहा, लेकिन किसी ने पीछे से उसे धक्का दे दिया। वह लड़खड़ाया। फिर बाँध टूट गया और घूँसों, थप्पड़ों और लातों की बारिश सी होने लगी। 'कबूलेगा या नहीं?' की आवाजें रह-रह कर शोर-गुल के ऊपर उभर उठती थीं।

धीरे-धीरे लोग अंधे और बहरे होते जा रहे थे। किसी की आवाज कान में न पड़ती थी। कोई भी सुझाव जो भरता, फौरन अमल में आ जाता। जनता की मनोवृत्ति चिकने गेंद-सी-जरा से इशारे पर इधर-उधर लुढ़क रही थी। क्या जाने किसकी आवाज थी, 'तालाब में डुबा दो! दो-चार डुबकियों में सारा पागलपन हवा हो जाएगा।

एक मुँह की आवाज दो मुँहों से दुहराई गयी, फिर चार छः... दस... बीस आवाजों ने इस बात को दुहराया और लोग उसे पकड़कर तालाब की तरफ घसीटने लगे। इश्तियाक ने पूरा प्रतिरोध किया। अंत में जमीन पर बैठ गया लेकिन वे उसे घसीटकर ले चले। पास पहुँचकर पीछे के एक जोरदार धक्के ने उसे तालाब में मुँह के बल गिरा दिया।

शाम हो चुकी थी। ठंडी हवा तीर की तरह सनसनाती चल रही थी। इश्तियाक पानी में दो क्षण पड़े रहने के बाद उठकर खड़े होने की चेष्टा करने लगा। लोगों ने किनारे से ही लाठी के हूलों से मार-मार उसे नदी के अंदर रखने की चेष्टा की। दो साहसी जवान पानी में उतरे और उन्होंने उसे धक्का दे पानी में गिरा दिया। एक ने उसकी छाती पर अपना पैर रख, उसे पानी के अंदर ही दबाए रखने की कोशिश की। इश्तियाक को हिचकियाँ आने लगीं और वह पानी के कई

घूँट पी गया। चौधरी ने चिल्लाकर उससे जुर्म कबूल करने और नूरा को हाजिर करने का इकरार कराना चाहा। इश्तियाक अब तक बेहिस-सा हो उठा था, जैसे यह सारी चीटें उस पर न पड़ रही हो। अब वह भी अपने ऊपर पड़नेवाली चोटों की तृतीय व्यक्ति की तरह देख सकता था। जब उसकी साँस पानी के अंदर फूल जाती थी तो वह खड़ा हो जाता था। उस समय दिखाई पड़ता था कि सारा शरीर कीचड़ से लथपथ है, कपड़े सब फट चुके हैं, पीठ और छाती पर लाठी के हूलों के निशान नीले पड़े रहे हैं, जगह-जगह खून के दाग भी हैं। उसका दिमाग काबू में न था और शरीर थर-थर काँप रहा था।

चौधरी की बात का जवाब न देने पर फिर उसे डुबाकियाँ दी गईं। किनारे के लोग जब भी मौका मिलता, उसपर लाठियों से चोट जरूर करते थे। सहसा किसी को एक नया तरकीब सूझ गई। पास के घर से कुछ पंखें मंगाए गए। इश्तियाक को तालाब से बाहर निकलने दिया और फिर उसके कपड़े उतार लिए गए। अब तीन-चार मनुष्य उसे घेरकर खड़े हो गए और पंखे-झुला झुलाकर उसे हवा पहुँचाने लगे। उसका चिथा-नुचा शरीर बेत की तरह काँप रहा था।

—कबूल करता है? —चौधरी ने पूछा।

—अगर न करे, तो दो गोते और दो और फिर हवा करो! अभी दिमाग डंठा हुआ जाता है! दूसरी आवाज।

हाफिजजी ने कसकर अपना गुलूबन्द में लपेट लिया।

—दाढ़ी नोच लो, दाढ़ी कमबख्त की! दाढ़ी रखता है और ऐसे काम करता है!

—एक और आवाज।

निश्चित था कि इस समय कोई सुझाव, हल्का-सा इशारा हुक्म का रूप ले लेता था। समूह पूरी तरह हिंस्त्र और विचारशून्य हो चुका था। हर नई चोट के बाद और जोर से चोट करने की इच्छा होती उभर आती थीं। वे इश्तियाक को रोते, बिलबिलाते और रहम की भीख के लिए गिड़गिड़ाते हुए देखना चाहते थे, लेकिन उसमें जितनी देरी हो रही थी, उनका क्रोध बढ़ता जा रहा था।

इश्तियाक ने दाँत-पर-दाँत दबाये उन्हें बजने से रोकने की कोशिश की और कुछ कहना चाहता था। उसके हाँठ दो-तीन बार फड़फड़ाए और फिर वह जमीन पर गिर गया। इसी समय एक अप्रत्याशित घटना घटी।

(8)

नूरा को इशितायक ने कहीं दूर भिजवा दिया है, यह एक अफवाह ही थी। उसे हक पर होने का इतना यकीन था कि वह इसकी जरूरत न समझता था। अपने भाई के कहने पर उसने यह आशा की थी कि पंचायत से ही शायद नूरा के तलाक का मसला हल हो जाय। उसके बाद वह स्वयं भी अपने भाई का घर छोड़ कहीं किस्मत-आजमाई करने की सोच रहा था, क्योंकि वह जानता था कि यहाँ एक और परिवार की गुजर किसी तरह नहीं हो सकती है। नूरा को उसने घर की छत के कमरे में, जिसमें सिर्फ गल्ला रखा जाता था, छुपकर रहने को उसने बता दिया था।

पंचायत के दिन वह बहुत घबरा रही थी। इशितयाक ने उसे तसल्ली दी और समझाया था कि वह जरा भी फिक्र न करें, आज वह सब मामला तय करके ही लौटेगा। लेकिन नूरा को इतमीनान न हुआ था। इतने ही दिनों में उसने अपनी बिरादरी और उसके स्वभाव का एहसास काफी हो गया था, शायद इशितयाक से ज्यादा। किसी प्रकार उसने मुहल्ले के एक लड़के को तैयार कर लिया कि वह अगर पंचायत में कुछ बनते-बिगड़ते देखे तो फौरन उसे खबर कर दे।

जिस समय इशितयाक को तालाब में ढकेलने के लिए घसीटा जा रहा था, उस लड़के ने साइकिल उठायी और हाँफता हुआ जाकर नूरा से सब हाल कहा। लड़के के चेहरे पर भय और आतंक का साम्राज्य था। उसने बमुश्किल तमाम वहाँ का हाल बताया कि वह इशितायक को जिंदा न छोड़ेंगे।

नूरा के हाथ-पैर फूल गए। लेकिन जल्द ही उसने अपने को संभाला और इशितयाक के भाई से उसने कहा अगर भाई का कुछ भी दर्द है, तो सीधे भागकर पुलिस में खबर कर दे कि पंच उसकी जान लेने पर तुले हैं। मैं सीधे वहाँ जाकर देखती हूँ, ज्यादा से ज्यादा वे मेरी जान ही तो लेंगे!

वह इतनी तेजी से लड़के के साथ चल दी, जैसे उसके पर लग रहे हों।

इशितयाक के गिरने पर पंच अभी सोच न पाए थे कि अब क्या किया जाय कि आँधी की तरह नूरा उनके सर पर आ पहुँची।

उसके कपड़े अस्त-व्यस्त हो गए थे। लाल ओढ़नी सर से उतरकर कंधों पर से भी सरक रही थी। बाल बिखर रहे थे। साँसें तेज़ थीं। उसने भीड़ को पार किया और इशितयाक के पास जा पहुँची। उसे देखा और फिर तनकर खड़ी हो गई। आज तक पंचों ने ऐसा दृश्य न देखा था। उन्हें जैसा सांप सूँघ गया हो। सिर्फ मंजर

साहब और हाफिजजी उसके उभरते-गिरते वक्ष को बगौर देख रहे थे। हाफिजजी बोले- बेहया कहीं की! इसकी भी मरम्मत होनी चाहिए! आँखों का पानी बिल्कुल ही मर गया है!

नूरा ने हाँफते हुए स्पष्ट चीखती आवाज में कहा- हत्यारे! लो, मैं हाजिर हूँ! अगर हमारे खून से तुम्हारी छाती ठंडी होती हो, तो आकर अपने अरमान निकालो!

लतीफ उमड़ा-पंचों! हमारे मुँह में इसने ऐसी कालिख लगाई है कि कहीं का नहीं रखा!

लेकिन नूरा की आवाज सबसे ऊपर उभर रही थी-चौधरी! पूछ इस कमबख्त से कि क्या मैं इंसान नहीं हूँ! क्या मुझे खाना-कपड़ा देना इसका फर्ज नहीं है? क्या जानवरों की तरह हाँककर और डंडे बरसाकर यह मुझसे काम ले सकता है?... यह मेरा बाप नहीं, दुश्मन है, जिसने मुझे ऐसे कायर के नामर्द के हाथ सौंपा है। पंचों में हिम्मत हो, तो मैं कपड़े उतारकर दिखाऊँ इस शैतान की दी हुई चोटों के निशान!

चौधरी ने खँखाकर साहस बटोरा-तेरे रोटी-कपड़े का सवाल पंच सुनेंगे। आगे से लतीफ ऐसा जालिमाना बर्ताव तेरे साथ न कर सकेगा।

नूरा चमककर बोली-मुँह धो रखो, चौधरी, कि तुम मुझे फिर उस घर में भेजोगे! तुम भी औरत से पैदा हो चौधरी और मैं भी। देखूँगी कौन मुझे जिंदा इसके घर भेज सकता है, हाँ, अगर चाहो, तो तुम मेरा भी खून करा सकते हो। लेकिन यह बता दूँ कि अब तुम अपनी फिकर भी कर रखो! पुलिस को खबर हो गई है और है और वह आती ही होगी।

उसके बाद वह इशियाक पर झुक गई। उसकी सारी शक्ति खत्म हो चुकी थी। अब इशियाक के कीचड़ खून भरे चेहरे को देख जब्त न कर सकी और फूट-फूटकर रो पड़ी।

जैसे क्रेन का चक्का घुमाते-घुमाते हाथ से छूट जाय और सारा बोझ यकायक भहरा पड़े, वैसा ही वातावरण पंचायत में उपस्थित हो गया। चौधरी ने कुछ तेज़ पंचों को बुरा-भला कहा और उन्हें जिम्मेदार बताया। पंचों ने दोष मंजर साहब पर थोपना चाहा। सभी एक-दूसरे को दोष दे रहे थे कि जो ज्यादातियाँ हुई, उसी के कारण हुई! दर्शक खिसक गये। जालिम के लोग भी सुबह के सितारे की तरह कम होने लगे। हाफिजजी खिसकने लगे, और उन्हें पंचों ने रोका, तो वह

हड़बड़ाकर बोले—मैं नहीं रुक सकता। जानते हो, मुझे पेचिश हो रही है, सुबह से बिस्तर पर पड़ा था। पंचों के हुकुम पर किसी तरह चला आया। सर्दी भी बढ़ी चली है।

इश्तियाक को जाज़िम पर जगह दी गई। पंच उसे झाड़-पोछकर फूस की आग उसे तपा रहे थे। नाई उसे हुक्का पकड़ाना चाहा, क्योंकि सर्दी में यह लाजवाब चीज है।

जाड़े की सुनसान सुरमई साँझ गहरा चली थी। अलाव जल रहा था। लतीफ के बुरे व्यवहार की आलोचना में चना हो रही थी। फिर इस मामले का फैसला होगा। अगर लतीफ का कसूर है तो उसे तलाक देनी पड़ेगी। उसे सस्ते न छोड़ा जाएगा।

मंजर साहब के चेहरे पर फटकार बरस रही थी। वह सोच रहे थे, नूरा की दृढ़ता और वफादारी की बात। काश, उसने मुझसे मोहब्बत की होती!...

आकाश धुँधला और रहस्यपूर्ण दिख रहा था। धीरे-धीरे तारे उभर चले।

—ये बाहर के तमाशाई बड़ी गड़बड़ी करते हैं, बेकार दखल देने लगते हैं, सब मनमानी हो जाती है।

शाहिद कुचकुचाती आँखों से अपने हाथ की घड़ी को घूरते हुए बोले—भई, बड़ी खराब बात है। मुसलमान की दाढ़ी उखाड़ लेने की बात कही जाती है उस भीड़ में सब धर्म-जाति के लोग थे, मार-पीट में वे शामिल थे, यह बेजा बात है।

उसी समय पुलिस के दो सिपाहियों ने इश्तियाक के भाई के साथ आकर खबर सुनाई कि दरोगाजी पंचों को मिलने के लिए बुलाया है।

चौधरी ने उन्हें अश्वासन देना चाहा कि कल फजिर वे लोग दरोगा की खिदमत में हाजिर होंगे। इस वक्त जाड़े की रात बुड़े कहाँ परेशान हों। सिपाहियों ने उसी समय चलने का इसरार किया।

कोई अकड़ा-चलो न, पंचों! क्या फाँसी पर चढ़ा देंगे! यह बिरादरी का मामला है, इसमें दखल देने का हक किसी को नहीं है।

(9)

जाड़े की रात सनसना रही थी। आकाश में बादल घिर गए थे। कुहरे में लिपटी सुनसान पगडंडी पर इश्तियाक और नूरा एक-दूसरे से सटे चल रहे थे। उनके पीछे इश्तियाक का भाई था।

नूरा ने उसे सहारा दे रखा था। सहसा वह दर्द-भरे स्वर में बोली-जालिमों ने मार डालने की पूरी कोशिश कर थी।... तुम भी बस... आखिर जो कहते थे, मान क्यों न लिया? मुझे बुलवा लिया होता। -उसने एक लंबी सांस खींची।

इशितयाक ने उसका कंधा-जरा-सा दबाया और एक उपेक्षा-भरी हूँ की। फिर कुछ देर बाद प्रशंसा भरे स्वर में बोला-पर नूरा तो पंचों का नातका बंद कर दिया, क्या याद करेंगे!-फिर पीछे मुड़कर अपने भाई से बोला- आज ही हम चल देंगे। घबराओ नहीं, तुम्हें मुसीबत में नहीं डालेंगे।

उसका भाई रुँधे गले से बोला- पर इसकी जरूरत अब नहीं है, इशितयाक भैया। अब कुछ नहीं होगा। डाक्टरी कराके एक रिपोर्ट हो जाने पर पंच बँधे-बँधे फिरेंगे।

-जरूरत हो या न हो, -नूरा ने मुस्कुराकर कहा-हम अब ऐसे कमीनों के बीच में नहीं रहेंगे!

-हाँ ठीक कहती है यह, भाई, -इशितयाक बोला- दुनिया काफी लंबी-चौड़ी है। □□